eISSN 2583-6986

IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 01, Issue 12, Dec 2022

1857 की क्रांति का स्वरुप एक समीक्षात्मक अध्ययन

[1]रचित कुमार
[1]रिसर्च स्कॉलर, फैकल्टी ऑफ हिस्ट्री, राधा गोविन्द यूनिवर्सिटी, रामगढ, झारखण्ड, भारत

Abstract

1857 की क्रांति भारतीय राष्ट्रीय इतिहास में अपनी एक अमिट छाप बनाये हुए है। यह क्रांति कोई एक दिन की घटना– परिघटना का परिणाम नहीं थी अपितु यह तो परिणति थी एक लम्बे समय से चली आरही उस शोषणवादी व्यवस्था के खिलाफ जिसे की भारतीय लोगों के ऊपर जबरदस्ती थोपा गया था। 1857 की क्रांति पर जब भी हम दृष्टि डालते हैं तो हमें यह पता चलता है कि इस क्रांति ने भारतीय राष्ट्रीय इतिहास की दिशा ही बदल कर रखी दी द्य ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि सत्तावन की क्रांति होने के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन अपनी एक अलग ही गति में पहुच गया था, सत्तावन की क्रांति होने से पहले जो भी थोड़े बहुत आन्दोलन, विद्रोह हुए उन्हें राष्ट्रीय विद्रोह की संज्ञा नहीं दी गयी। ऐसा इसलिए भी माना जाता है क्योंकि इस क्रांति के होने से पहले लोगों में कही न कहीं राष्ट्रीयता की भावना उतने प्रबल तौर पर देखने को नहीं मिलती है। इसी बात को आधार बनाकर एक बहस शुरू होती है जिसमें की यह प्रश्न खड़ा होता है कि सत्तावन की क्रांति एक राष्ट्रीय विद्रोह है या फिर एक क्रांति ? प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य उन तथ्यों को उद्घाटित करना है जिनके आधार पर यह सिद्ध किया जा सके कि सत्तावन की क्रांति सच में एक राष्ट्रीय विद्रोह ही था या फिर कुछ और ?

शब्द संक्षेप– क्रांति, राष्ट्रीय विद्रोह, आन्दोलन, राष्ट्रीयता, कंपनियां, भारत

Introduction

वर्ष 1857 भारतीय राष्ट्रॉय इतिहास में एक ऐसा समय जिसकी अपनी एक अलग ही पहचान है, वो पहचान जो शायद कभी मिटाई नहीं जा सकती। ऐसा इसलिए क्योंकी इसके बाद से ही भारतोय राष्ट्रॉय आन्दोलन ने एक अलग ही गति पकड़ ली थी। सत्तावन की क्रांति उस सीमा रेखा के समान है जिसके आधार पर ही हम आधुनिक इतिहास को राष्ट्रीय आन्दोलन की श्रेणी में रखते हैं।

मुगल साम्राज्य के पतन होने के साथ ही भारत में धीरे धीरे व्यापारिक कम्पनियां अपना वर्चस्व स्थापित करने लगी थी। भारत में आने वाली व्यापारिक कम्पनियों में पुर्तगाली, डच, अंग्रेजी, डेनिश तथा फरांसिसी थे। इन सभी कंपनियों को हराते हुए ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में अपनी शासन व्यवस्था को स्थापित किया। ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन भारत में वास्तविक तौर पर तब स्थापित हुआ जब उसने बक्सर के युद्ध में बंगाल के नवाब को हराकर जीता दर्ज की इस युद्ध में मिली जीत ने उसके शासन व्यवस्था की जड़ भारत में फैला दी शुरू में जब ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन भारत में स्थापित हुआ तो उसने यहाँ के शासन प्रशासन में किसी भी प्रकार का हसतक्षेप करना उचित नहीं समझा परन्तु जब उसने यहाँ की स्थितियों को भली भाँती समझ लिया तो उसने धीरे धीरे यहाँ की राजनैतिक परिस्थितियों में भी हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया इसके साथ ही

साथ समय समय पर कंपनी के द्वारा ऐसी नीतियों और संधियों का भी प्रतिपादन किया गया जिससे की उसके साम्राज्य को बढ़ावा मिल सके। अपनी साम्राज्यवादी नीति के तहत ही उसने दो संधियों नीतियों का प्रतिपादन किया जिसके आधार पर उसका क्षेत्र बढ़ सके। जिनमें से एक थी 1798 में आई लार्ड वेल्जली की सहायक संधि और दूसरी थी लार्ड डलहौजी की विलय नीति लार्ड डलहौजी की विलय नीति ने सत्तावन की क्रांति के होने में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी क्योंकी लार्ड डलहौजी ने अपनी विलय नीति के अंतर्गत ही बहुत सारे भारतीय राज्यों का ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन में विलय कर लिया था और इसी बात के चलते बहुत से राजा तथा रजवाड़े कंपनी के शासन से रुष्ट हो गए थे ऐसे ही कंपनी ने भारत का आर्थिक तौर पर भी शोषण करना शुरू कर दिया था इस बात का पता तब चलता है। जब दादाभाई नौरोजी अपनी ड्रेन थ्योरी के सिद्धांत के द्वारा भारतीय लोगों को यह बताते हैं कि ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा भारत से ब्रिटेन को बहुत सारा निर्यात किया जाता है और इसके बदले में कंपनी के द्वारा भारत को कुछ भी नहीं दिया जाता है अर्थात एक प्रकार से यह अप्रदत्त निर्यात था। इसके साथ ही साथ ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा ऐसी तमाम प्रकार की लगान सग्रह करने की व्यवस्थाओं को लागू किया गया जिससे की भारत की आम जनता तथा भारतीय किसानों का शोषण किया जा सके फिर चाहे वह स्थाई बंदोवस्त हो या रैय्यतवाड़ी व्यवस्था या फिर महालवाड़ी व्यवस्था ही क्यों न हो ? इन सभी व्यवस्थाओं के आने से भारतीय किसानों का लगातार शोषण होता चला गया और किसान लगातार ब्रिटिश शासन के विरोध में आते चले गए। इसके अलावा अगर हम प्रशासनिक तौर पर देखते हैं तो हमें यह पता चलता है कि ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा सामाजिक तथा प्रशासनिक तौर पर भी भारतीय लोगों के साथ भेदभाव किया जाता था, ब्रिटिश लोगो के द्वारा भारतियों को काले कहकर पुकारा जाता था। इस सबका परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता के मन में ब्रिटिश शासन के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न होने लगा ऐसे ही अगर हम धार्मिक कारकों के बारे में चर्चा करते हैं तो हम यह पाते हैं कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में लगातार ईसाई धर्म का प्रचार प्रसार करना चाहती थी। कंपनी के द्वारा समय समय पर कई सारी मिशनरियों को भी भारत में धर्म प्रचार के लिए बुलाया जाता था इस प्रकार हमें यह देखने को मिलता है कि कंपनी ने अपनी विभिन्न प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक नीतियों के माध्यम से भारत में एक ऐसा माहौल तैयार कर दिया जिसकी परिणति अंततरू सत्तावन की क्रांति के रूप में देखने को मिलती है। विभिन्न प्रकार के कारकों के होने से क्रांति के लिए रंगमंच लगभग तैयार हो चूका था और जैसे ही गाय एवं सूअर की चर्बीयुक्त कारतूसों के प्रयोग की खबर सेना के मध्य फैली वैसे ही एक साथ क्रांति प्रस्फुटित हो गयी सत्तावन की क्रांति ने लगभग सम्पूर्ण भारत को प्रभावित किया और विशेषतः उत्तर भारत को।

1857 की क्रांति का स्वरुप सत्तावन की क्रांति के सम्बन्ध में जो एक सबसे बड़ा प्रश्न उठता है वह यह है कि इस क्रांति का स्वरुप क्या था ? क्या यह क्रांति मात्र एक सैनिक विद्रोह था या फिर इसे सिर्फ क्रांति की ही संज्ञा देना अधिक उचित होगा या फिर सत्तावन की क्रांति को एक राष्ट्रीय विद्रोह कहना अधिक उचित होगा। ऐसे तमाम प्रकार के मत सत्तावन की क्रांति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के द्वारा समय समय पर पेश किये गए सत्तावन की क्रांति के स्वरुप को समझने के लिए हमें इसको दो वर्गों में बाटना होगा एक वह वर्ग जिसनें सत्तावन की क्रांति को राष्ट्रीय विद्रोह की

eISSN 2583-6986

IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 01, Issue 12, Dec 2022

संज्ञा देना अधिक उचित माना। इसके अलावा एक दूसरा वर्ग जिसने सत्तावन की क्रांति को राष्ट्रीय विद्रोह न मानकर इससे इतर कुछ और ही माना है फिर चाहे वे इसे एक सैनिक विद्रोह मानते हो या धर्मान्धो का ईसाईयों के खिलाफ विद्रोह मानते हो या फिर जो कुछ भी संज्ञा वे इसे देते हो।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य उन विचारों तथा मतों को उजाकर करना है जिसके आधार पर सत्तावन की क्रांति के स्वरुप का वास्तविक आकलन लोगों के सामनें लाया जा सके। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य उन विचारों तथा मतों को उजाकर करना है जिसके आधार पर सत्तावन की क्रांति के स्वरुप का वास्तविक आकलन लोगों के सामनें लाया जा सके और जनमानस के पटल पर इसकी एक साफ छवि उभरकर सामने आ सके इस सन्दर्भ में पहले हम उन विचारों तथा मतों का अध्ययन करेगे जिन्होंने इस बात की तरफ ज्यादा जोर दिया कि सत्तावन की क्रांति एक राष्ट्रीय विद्रोह था। अगर हम बात करें सत्तावन की क्रांति के राष्ट्रीय स्वरुप को लेकर तो इस सम्बन्ध में एक ब्रिटिश व्यक्ति बेंजामिन डिजरायली का नाम सामने आता है जो की रूढ़ीवादी दल के नेता थे उन्होंने ने 27 जुलाई 1857 ईव को हाउस ऑफ कामंस में बोलते हुए ब्रिटिश सरकार के मत का खंडन करते हुए यह कहा कि यह आन्दोलन ″एक राष्ट्रीय विद्रोह था न की सिपाही विद्रोह″ उनके इस मत के आने से पहले ब्रिटिश सरकार के द्वारा हमेशा इस बात का दावा किया जाता रहा कि सत्तावन की क्रांति एक राष्ट्रीय विद्रोह नहीं है। बेंजामिन डिजरायली के मतानुसार सत्तावन का विद्रोह एक आकस्मिक प्रेरणा नहीं था अपितु एक सचेत सयोंग का परिणाम था इसके साथ ही साथ वह एक सुनियोजित और सुसंगठित प्रयत्नों का परिणाम था जो अवसर की प्रतीक्षा में थे ″ किसी में साम्राज्य का उत्थान और और पतन चर्बी वाले कारतूसों के मामले से नहीं हो सकता वरन ऐसे विद्रोह उचित और पर्याप्त कारणों के एकत्रित होने के कारण होते हैं। इसी क्रम में एक अन्य विद्वान अशोक मेहता ने भी अपनी किताब ″दी ग्रेट रेबेलियन″ में भी इस बात पर जोर देने का प्रयास किया है की 1857 की क्रांति राष्ट्रीय स्वरुप की थी ऐसे ही अगर हम बात करें वी. डी. सावरकर के बारे में तो उन्होंने अपनी किताब ″दी वार ऑफ इंडिपेंडेंस 1857″ में सत्तावन की क्रांति को एक ″सुनियोजित स्वतंत्रता संग्राम″ की संज्ञा दी है उनके मत के अनुसार सत्तावन की क्रांति बस यू ही नहीं हो गयी थी बल्कि इसके पीछे कई सारे कारकों का अपना अहम योगदान था और इन्ही कारकों ने क्रांति के लिए लोगों को एकत्रित होने में अपनी महती भूमिका अदा की। इसके साथ ही साथ उन्होंने ने यह भी सिद्ध करने के प्रयत्न किया कि 1826 दृ 27 , 1831 दृ 32 , 1848 और 1854 में होने वाले विद्रोह तो किसी एक बड़े तूफान की तरफ इशारा कर रहे थे।

सत्तावन की क्रांति के सम्बन्ध में जिस एक इतिहासकार के विचार अपनी अहम भूमिका रखते हैं वह थे सुरेन्द्रनाथ सेन, सेन को ही सत्तावन की क्रांति का सरकारी इतिहासकार नियुक्त किया गया हालाँकि पहले इस कार्य के लिए आर. सी. मजूमदार को नियुक्त किया गया था परन्तु भारत सरकार से उनकी कुछ अनबन के चलते उन्होंने इस कार्य को करने से मना कर दिया जब हम सेन की किताब ″1857″ का गहन अध्ययन करते है तो हमें यह पता चलता है कि उन्होंने सत्तावन की क्रांति को एक राष्ट्रीय विद्रोह की ही संज्ञा दी है। इसके पीछे उनका तर्क यह था की क्रांतियाँ प्रायरू किसी एक छोटे वर्ग से सम्बंधित होती हैं, जिसे जनता का समर्थन प्राप्त भी होता है और नहीं भी।

eISSN 2583-6986
..
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 01, Issue 12, Dec 2022

इस सन्दर्भ में वे दो क्रांतियों का भी उल्लेख करते हैं और कहते हैं कि अमेरिका की क्रांति तथा फरांस की क्रांति एक बहुत बड़े वर्ग से सम्बंधित नहीं थी क्यूंकि अमेरिका में निवास करने वाले अधिकतर अंग्रेज इंग्लैंड की सरकार के प्रति स्वामिभक्त रहे और क्रांति होने के पश्चात उनमे से साठ हजार लोग तो कनाडा में जाकर बस गए ऐसा ही कुछ हमें फ्रांस की क्रांति के सन्दर्भ में भी देखने को मिलता है क्योंकि फरांस में क्रांति होने के समय भो एक बहुत बड़ा वर्ग राजशाही का समर्थक था। इसी में आगे एस. एन. सेन लिखते हैं कि "एक विद्रोह जिसमें की बहुत से लोग सम्मिलित हो जाए तो उसका स्वरुप राष्ट्रीय हो जाता है" इसी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए वे लिखते हैं कि सैनिक विप्लव विद्रोह के रूप में आरम्भ हुआ, और उसने उस समय राजनैतिक स्वरुप धारण कर लिया जब विद्रोहियों ने दिल्ली के शासक को अपना राजा स्वीकार कर लिया। बाद में आगे चलकर इसमें बड़े बड़े भूमिपतियों और जनसामान्य के एक बहुत बड़े वर्ग ने हिस्सा लिया और उन्होंने ने भी दिल्ली के बादशाह को अपना शासक मान लिया। प्रारंभ में यह विद्रोह धर्म की रक्षा के तौर पर शुरू हुआ परन्तु देखते ही देखते इसने स्वतंत्रता संग्राम का रूप धारण कर लिया जिसका एक मात्र उद्देश्य इस नयी विदेशी सरकार को जड़ से उखाड़ फेकना था तथा भारत में फिर से उसी पुरानी सत्ता की स्थापना करना था जिसमें की दिल्ली का शासक ही केन्द्रीय भूमिका निभाता था। इसी क्रम में जब हम डा. एस. बी. चौधरी के बारे में बात करते हैं तो उन्होंने अपनी पुस्तक Civil Rebellion in the Indian Mutinies 1857– 59 में सत्तावन की क्रांति को सैनिक विद्रोह के साथ साथ असैनिक विद्रोहों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करने तक ही अपने आपको सीमित रखा है। चौधरी के अनुसार हम इस विद्रोह को दो भागों में बाँट सकते हैं य सैनिक विप्लव और विद्रोह इस बारे में उनका मानना था कि सत्तावन का विद्रोह दो प्रकार की अशांतियों का एकत्रित होना था, सैनिक तथा असैनिक।

इसके अलावा जब हम इसके दूसरे पक्ष की तरफ जाते हैं अर्थात वह पक्ष जिसमें इतिहासकारों ने सत्तावन की क्रांति को राष्ट्रीय विद्रोह की संज्ञा न देते हुए इसे कुछ और ही सिद्ध करने का प्रयास किया है। इस सन्दर्भ में भी हमें भिन्न दृ भिन्न मत देखनें को मिलते हैं, जब हम मालेसन, ट्रेवेलियन, सीले और लॉरेंस जैसे विदेशी इतिहासकारों के विचारों का अध्ययन करते हैं तो यह पाते हैं कि इन सभी विचारकों ने सत्तावन की क्रांति को कहीं न कहीं एक सैनिक विद्रोह कहना अधिक उचित समझा। परन्तु जब हम इस बात के मूल में जाते हैं तो हमें यह देखनें को मिलता है कि उनके विचार कहीं न कहीं ब्रिटिश साम्राज्यवाद से अधिक प्रभावित थे अर्थात वे ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के खिलाफ बिल्कुल भी नहीं लिख सकते थे। इन सभी विचारकों के अनुसार सत्तावन की क्रांति सिर्फ सेना तक ही सीमित रही और न तो इसे जनसमर्थन प्राप्त हुआ इसलिए इसे सैनिक विद्रोह कहना अधिक उचित होगा। सत्तावन की क्रांति को सैनिक विद्रोह कहने वाले इतिहासकारों में सिर्फ विदेशी ब्रिटिश इतिहासकार ही शामिल नहीं थे अपितु इसमें कुछ समकालीन भारतीय इतिहासकार जैसे मुंशी जीवनलाल और मुइनुइद्दीन (जो क्रांति के समय दिल्ली में ही थे), दुर्गादास बंदोपाध्याय (जो क्रांति के समय बरेली में थे), सर सैय्यद अहमद खां (जो सन 1857 में बिजनौर में सदर अमीन के पद पर थे) जैसे लोगों ने भी इसे सैनिक विद्रोह की संज्ञा देना अधिक उचित समझा वहीं कुछ विद्वानों ने इसे ईसाईयों के विरुद्ध धार्मिक युद्ध की संज्ञा दी अथवा श्वेत एवं काले लोगों

eISSN 2583-6986

IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 01, Issue 12, Dec 2022

के बीच सर्वश्रेष्ठता के लिए संघर्ष कहा इसके अलावा कुछ लोगों ने इसे पाश्चात्य तथा पूर्वी सभ्यता तथा संस्कृति के बीच संघर्ष का नाम दिया। तो वहीँ कुछ अन्य लोगों ने इसे ब्रिटिश राज्य को उखाड़ फेकने के लिए हिन्दू मुस्लिम षड़यंत्र का नाम दिया।

जब हम सर जॉन लॉरेंस और सीले के विचारों का गहन अध्ययन करते हैं तो यह पाते हैं कि उन्होंने सत्तावन की क्रांति को सैनिक विद्रोह के अलावा और कुछ भी नहीं माना है। उनके अनुसार सत्तावन का विद्रोह एक पूर्णतया देशभक्ति रहित और स्वार्थी सैनिक विद्रोह था जिसमें न कोई स्थानीय नेतृत्व ही था और न ही इसे सर्वसाधारण का समर्थन प्राप्त था। उनके अनुसार यह विद्रोह एक संस्थापित सरकार के विरुद्ध भारतीय सेना का विद्रोह था इसी बात को वे आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि हा ये बात जरुर मानी जा सकती है कि इसमें कुछ देशी रियासतों ने भी भाग लिया, परन्तु ये वही देशी रियासतें थी जिनका विलय लार्ड डलहौजी के द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी में कर लिया गया था और इसी वजह से इन सभी रियासतों ने विद्रोह में अपना सहयोग प्रदान किया। सत्तावन की क्रांति के दमन के संवंध में वे लिखते हैं कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने संस्थापित सरकार होने के कारण इस विद्रोह का दमन किया और कानून और व्यवस्था को फिर से पुनरू स्थापित किया।

इसी प्रकार से जब हम एल.ई.आर. रीज के कथन के बारे में बात करते है जिन्होनें सत्तावन की क्रांति को धर्मान्धों का ईसाईयों के विरुद्ध युद्ध बताया था। परन्तु उनके इस कथन से सहमत होना बहुत ही कठिन है क्योंकि विद्रोह की आग में भिन्न भिन्न धर्मों के नैतिक नियमों का लड़ने वालों पर कोई नियंत्रण नहीं था फिर चाहे वह ईस्ट इंडिया कंपनी की तरफ से लड़ रहे ईसाई सैनिक हों या फिर भारतीय लोग हों दोनों ही गुटों ने अपनी ज्यादतियों को छिपाने के लिए अपने अपने धर्म ग्रंथों का सहारा लिया। इस संघर्ष में अंतिम तौर पर ईसाई जीत गए परन्तु इसका ये मतलब नहीं की ईसाई धर्म विजित हो गया। ऐसे ही अगर हम कहें तो हिन्दू और मुसलमान पराजित हुए परन्तु हिन्दू और मुस्लिम धर्म नहीं। हा इस बात को जरुर स्वीकार किया जा सकता है पाश्चात्य विज्ञान के समान ईसाई धर्म का भी भारतीय मन पर प्रभाव हुआ परन्तु ईसाई धर्म प्रचारकों धर्म प्रचार में कोई विशेष सफलता नहीं मिली अगर इस बारे में और बढ़ चढ़कर बात की जाये तो यह भी कहा जा सकता है कि यह जातीय युद्ध नहीं था। जैसा की ब्रिटिशों के द्वारा कहा गया की यह श्वेत तथा अश्वेत के बीच युद्ध था लेकिन यह बात पूर्णतया सत्य नहीं बैठती है क्योंकि सारे श्वेत लोग भले ही एक तरफ थे परन्तु सभी अश्वेत लोग अर्थात सभी भारतीय एक तरफ नहीं थे। जैसा की कैप्टन मेडले कहते हैं कि ब्रिटिश कैम्पों में एक श्वेत व्यक्ति पर 20 काले व्यक्ति होते थे। इसी क्रम में वे आगे लिखते हैं कि भारतीय लोगों ने गोरे सैनिकों की हर प्रकार से मदद की उन्होंने उनके लिए खाना भी बनाया और घायल सैनिकों को युद्ध स्थल से पालकी के माध्यम से राहत कैम्पों तक भी पहुचाया। वास्तव में अगर इसे काले विद्रोहियों और काले लोगों द्वारा समर्थित गोरे शासकों के बीच युद्ध कहना ही इसके साथ न्यायोचित होगा। विभिन्न विद्वानों, इतिहासकारों तथा लेखकों के विचारों का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि सत्तावन की क्रांति के सन्दर्भ में जो विचार मत विदेशी इतिहासकारों के द्वारा प्रस्तुत किये गए उनमें कहीं न कहीं पूर्वाग्रह दिखाई देता है। ऐसा

eISSN 2583-6986

IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 01, Issue 12, Dec 2022

इसलिए कहा जाता है क्योंकि सभी विदेशी इतिहासकारों ने सत्तावन की क्रांति को एक राष्ट्रीय विद्रोह की संज्ञा देने से एक स्वर में माना कर दिया। वहीँ जब बात सत्तावन की क्रांति को लेकर भारतीय इतिहासकारों के दृष्टिकोण के बारे में होती है तो हमें यह पता चलता है कि उनमें से ज्यादातर लोगों ने सत्तावन की क्रांति को भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ा गया एक राष्ट्रीय विद्रोह कहना अधिक उचित समझा। जैसा की एस. रीज के कथन के बारे में बात करते है जिन्होनें सत्तावन की क्रांति को धर्मान्धों का ईसाईयों के विरुद्ध युद्ध बताया था। परन्तु उनके इस कथन से सहमत होना बहुत ही कठिन है क्योंकि विद्रोह की आग में भिन्न भिन्न धर्मों के नैतिक नियमों का लड़ने वालों पर कोई नियंत्रण नहीं था फिर चाहे वह ईस्ट इंडिया कंपनी की तरफ से लड़ रहे ईसाई सैनिक हों या फिर भारतीय लोग हों दोनों ही गुटों ने अपनी ज्यादतियों को छिपाने के लिए अपने अपने धर्म ग्रंथों का सहारा लिया। इस संघर्ष में अंतिम तौर पर ईसाई जीत गए परन्तु इसका ये मतलब नहीं की ईसाई धर्म विजित हो गया ऐसे ही अगर हम कहें तो हिन्दू और मुसलमान पराजित हुए परन्तु हिन्दू और मुस्लिम धर्म नहीं। हा इस बात को जरुर स्वीकार किया जा सकता है पाश्चात्य विज्ञान के समान ईसाई धर्म का भी भारतीय मन पर प्रभाव हुआ परन्तु ईसाई धर्म प्रचारकों धर्म प्रचार में कोई विशेष सफलता नहीं मिली। अगर इस बारे में और बढ़ चढ़कर बात की जाये तो यह भी कहा जा सकता है कि यह जातीय युद्ध नहीं था। जैसा की ब्रिटिशों के द्वारा कहा गया की यह श्वेत तथा अश्वेत के बीच युद्ध था लेकिन यह बात पूर्णतया सत्य नहीं बैठती है क्योंकि सारे श्वेत लोग भले ही एक तरफ थे परन्तु सभी अश्वेत लोग अर्थात सभी भारतीय एक तरफ नहीं थे जैसा की कैप्टन मेडले कहते हैं कि ब्रिटिश कैम्पों में एक श्वेत व्यक्ति पर 20 काले व्यक्ति होते थे। इसी क्रम में वे आगे लिखते हैं कि भारतीय लोगों ने गोरे सैनिकों की हर प्रकार से मदद की उन्होंने उनके लिए खाना भी बनाया और घायल सैनिकों को युद्ध स्थल से पालकी के माध्यम से राहत कैम्पों तक भी पहुचाया। वास्तव में अगर इसे काले विद्रोहियों और काले लोगों द्वारा समर्थित गोरे शासकों के बीच युद्ध कहना ही इसके साथ न्यायोचित होगा।

इसके अलावा जब हम टी. आर. होम्स जैसे विचारकों के मतों का व्यापक तौर पर अध्ययन करते हैं तो हमें यह पता चलता है कि इस वर्ग के विद्वानों ने इसे बर्बरता एवं सभ्यता के बीच युद्ध की संज्ञा दी है। लेकिन टी. आर. होम्स का यह विचार कहीं न कहीं संकीर्ण मानसिकता को ही दर्शाता है क्योंकि अगर कानपुर, लखनऊ एवं दिल्ली जैसी जगहों पर अगर भारतीय लोगों के द्वारा यूरोपीय स्त्रियों तथा बच्चों को मार दिया गया तो इसके साथ ही साथ बहुत से ऐसे भी उदाहरण देखनें को मिलते हैं जहाँ पर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा निर्दोष लोगों को मौत के घात उतार दिया गया इसके अलावा पूरे के पूरे गाँव जलवा दिए गए हडसन ने तो दिल्ली में न जाने कितने ही निर्दोष लोगों को फासी पर लटकवा दिया और ऐसे ही यह भी कहा जाता है कि इलाहाबाद में शायद ही ऐसा कोई पेड़ बचा हो जिस पर किसी व्यक्ति को लटकाया न गया हो। कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि होम्स द्वारा दिए गए विचार कहीं न कहीं पूर्वाग्रह तथा जातीय भेदभाव से ग्रसित थे।

eISSN 2583-6986

IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 01, Issue 12, Dec 2022

विभिन्न विद्वानों, इतिहासकारों तथा लेखकों के विचारों का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि सत्तावन की क्रांति के सन्दर्भ में जो विचार मत विदेशी इतिहासकारों के द्वारा प्रस्तुत किये गए उनमें कहीं न कहीं पूर्वाग्रह दिखाई देता है। ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि सभी विदेशी इतिहासकारों ने सत्तावन की क्रांति को एक राष्ट्रीय विद्रोह की संज्ञा देने से एक स्वर में माना कर दिया वहीँ जब बात सत्तावन की क्रांति को लेकर भारतीय इतिहासकारों के दृष्टिकोण के बारे में होती है तो हमें यह पता चलता है कि उनमें से ज्यादातर लोगों ने सत्तावन की क्रांति को भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ा गया एक राष्ट्रीय विद्रोह कहना अधिक उचित समझा। जैसा की एस. एन. सेन लिखते हैं कि सत्तावन की क्रांति भले ही एक सैनिक विद्रोह के रूप में शुरू हुई परन्तु बाद में समय में इसे जो जन समर्थन मिला उसने इसका स्वरुप राष्ट्रीय कर दिया।

सन्दर्भ सूची–

1. अहलूवालिया, एम०एस०, फ्रीडम स्ट्रगल इन इण्डिया, 1858–1909 दिल्ली, 1965.
2. आजाद, अबुल कलाम,रू इण्डिया विंस फ्रीडम (रिप्रिंटेड) नई दिल्ली, 1972.
3. ओल्टम, डब्ल्यू ०रू हिस्टारिकल एण्ड स्टेटिस्टिकल मेम्वायरस आफ दि गाजीपुर डिस्ट्रिक्ट, कलकत्ता, 1870.
4. अल्टेकर, ए०एस० हिस्ट्री आफ बनारस, बनारस 1935.
5. इन्स, मेकलियाड लेफ्टीनेन्ट जनरल दि सिप्वाय रिवोल्ट ए किटिकल नरेटिव, लन्दन, 1897.
6. इलिएट एण्ड डाउनसन, हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन खण्ड–5 इलाहाबाद 1964.
7. जार्ज, स्मिथ डॉ० ऐलेक्जेण्डर डफ की जीवनी लंदन, 1879.
8. शेरिंगरू दि इण्डियन चर्च ड्यूरिंग दी ग्रेट रिवेलियन।
9. रैक्सः नोट्स आन दि रिवोल्ट इन दि रिवोल्ट इन द नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज आफ इण्डिया लन्दन, 1858.
10. सर एडवर्ड गेट हिस्ट्री आसाम, 1859,
11. ऐनीबेसेण्ट हाऊ इण्डिया राट फार फ्रीडम मद्रास, 1915.
12. रेन्सेट, चोरा दि इकनामिक डेवलमेण्ट आफ इण्डिया, लन्दन, 1946.
13. ऐलेक्जेण्डर, ई०बी०, गजेटियर आफ एन, डब्ल्यू०पी० खण्ड–7 कलकत्ता, 1971.
14. जोमैली, एम०एस०एस० माडर्न इण्डिया, एण्ड दि वेस्ट, आक्सफोर्ड, 1941.
15. कनिंगहम, ए० द एन्सिएण्ड जियोग्रेफी आफ इण्डिया बाम्बे, 1963 (रिप्रिन्ट) 1963.
16. कनिंहम, डब्ल्यू ० ग्रोथ आफ इंगलिश इण्डस्ट्री एण्ड कामर्स इन माडर्न टाइम्स, लन्दन, 1930.
17. करटिल, ए० एल० लास्ट डोमिनियन, लन्दन, 1924.
18. कृष्णन, एस०एस० जीयोलाजी आफ इण्डिया एण्ड वर्मा, मद्रास, 1960.
19. के ०ई० जे०, डब्ल्यू ए हिस्ट्री आफ सिप्वाय वार इन इण्डिया भाग–2, लन्दन, 1870.
20. के ०ई० एण्ड मैलेसन, हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी 1857–58 खण्ड–4, लन्दन, 1889.
21. गैरेट जी०टी०ऐन इण्डियन कमेन्टरी लन्दन, 1928.

eISSN 2583-6986

IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 01, Issue 12, Dec 2022

22. गोपाल, एस० वायसरायब्ल्टी, आफ लार्ड रिपन लन्दन, 1953.
23. गोपाल, एस० ब्रिटिश पालसी इन इण्डिया दिल्ली, 1958.
24. मुखर्जी एल० हिस्ट्री आफ इण्डिया
25. गुप्ता, डी०सी० इण्डियन नेशनल मूवमेन्ट देहली, 1970.
26. पोलक जे०सी०रू वे टु ग्लोरी लाइफ आफ हैवलोक लन्दन, 1957.
27. चार्ल्स बाल, इण्डियन म्यूटिनी खण्ड–1 (लन्दन एवं न्यूयार्क)
28. फारेस्ट ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन लन्दन, 1904.
29. रसेल इण्डियन म्यूटिनी डायरी 1957.
30. चटर्जी नन्दलाल इण्डियाज फ्रीडम स्ट्रगल, इलाहाबाद, 1958
31. चाटर्जी ए०सी० इण्डियाज स्टूगिल फार फ्रीडम, कलकत्ता, 1947.
32. चट्टोपाध्याय हर प्रसाद दि सिपाय म्युटिनी आफ एटीन फिप्टीसेवनि कलकत्ता,
33. चोपड़ा पी०एन० (सम्पादक) वियट इण्डिया मूवमेन्ट ब्रिटिश सीकेट रिपोर्ट, नई दिल्ली, 1976.
34. विराल, वेलेन्टाइनः इण्डियन अनरेस्ट, लन्दन, 1910.
35. चौधरी, एस०वी०रू सिविल रिवेलियन इन दि इण्डियन म्यूटनीज (1857–159) कलकत्ता, 1957.